शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मार्च 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

नवजागरण काल के सामाजिक परिदृश्य में स्त्री संघर्ष

कपिल कुमार गौतम (शोधार्थी)
हिन्दी विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

भारतीय समाज में सैकड़ों वर्षों तक महिलाओं को उपेक्षा और अत्याचार का सामना करना पड़ा। उनके अधिकार और अस्मिता को घर की चार दीवारी तक सीमित कर दिया गया था। किन्तु नवजागरण काल में जहां एक ओर ब्रिटिश शासन के शोषण एवं दमन से मुक्ति पाने के लिए भारत वर्ष में स्वाधीनता संग्राम चल रहा था तभी उसके समानान्तर समाज सुधार की दिशा में भी प्रयत्न किए गए। उसी क्रम में महिलाओं ने भी अपनी बेड़ियों को तोड़ने का प्रयास किया। नवजागरण की चेतना ने पीढ़ियों से सामाजिक पराधीनता झेल रही महिलाओं को मुक्त के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया।

बीज शब्द : *नवजागरण, सामाजिक पराधीनता, स्त्री विमर्श, नारी चेतना।*

भूमिका

आधुनिक भारत में उन्नीसवीं सदी के मध्य से नवजागरण का आरंभ माना जाता है। वैश्विक स्तर पर स्त्री सुधार और अधिकार के लिए व्यापक आंदोलन इसी कालखंड में किए गए। सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं को सैकड़ों-हजारों वर्षों से उपेक्षा और बंधनों का सामना करना पड़ा है। किन्तु नवजागरण की चेतना और शिक्षा के विस्तार से महिलाओं में अपने अधिकार, अस्मिता और सम्मान के प्रति जाग्रति का भाव संचारित हुआ। वैश्विक पटल पर स्त्री-विमर्श और स्त्रीवादी साहित्य लेखन के संदर्भ में डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं "वास्तविकता यह है कि स्त्री-विमर्श बीसवीं शताब्दी की देन है। बीसवीं शताब्दी में भी कुछ लोग इसका प्रारम्भ फ्रांसीसी लेखक सिमोन द बौआ की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' (1949) के प्रकाशन वर्ष से मानते हैं और कुछ मैरी एलमन की पुस्तक 'थींकिंग एबाउट वीमेन' (1968) के प्रकाशन वर्ष से। लेकिन अधिकांश विद्वान इस तरह के किसी वर्ष विशेष को स्त्री-विमर्श का प्रस्थान बिन्दु मानना उचित नहीं समझते, क्योंकि बीसवीं शताब्दी में ही इससे पहले भी स्त्री की अलग पहचान, उसके स्वतंत्र अस्तित्व और उसके अधिकारों की समस्याओं को उठाया जाने लगा था।"[1] वास्तविकता यही है कि भारत में लेखन के स्तर पर स्त्री चेतना उक्त रचनाओं के लेखन से पूर्व ही दृष्टिगत हो रही थी।

भारत में स्त्री-विमर्श

भारत में स्त्री-विमर्श को साहित्यिक स्वीकार्यता समकालीन दौर की बात अवश्य हो सकती है किन्तु सामाजिक परिदृश्य में महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिए नवजागरण काल से ही व्यापक प्रयास किए हैं। समाज सुधार आंदोलनों के समानान्तर महिलाएँ भी स्त्री अधिकार एवं अस्मिता के लिए संघर्षरत थीं। इसी काल में देश

की प्रथम शिक्षिका मानी जाने वाली सावित्रीबाई फुले ने समाज में महिलाओं को अधिकार और सम्मान दिलाने के लिए जीवनपर्यंत संघर्ष किया। सुनन्दा पराशर के अनुसार "महाराष्ट्र में स्त्री सबसे पहले परिवार से निकल कर समाज में शामिल हुई और सावित्रीबाई फुले ने भारत की पहली स्त्री शिक्षिका होने का गौरव प्राप्त किया। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने सर्वप्रथम नारी की गुलामी का सवाल उठाया और सर्वप्रथम उन्होंने ही नारी के लिए सिर्फ शिक्षा नहीं वरन स्त्री-पुरुषों में किसी भी प्रकार का भेदभाव किये बिना सबको समान शिक्षा की बात की।"[2] इनके ही समकालीन "महाराष्ट्र में 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई 1882-83 में जब इसमें प्रसिद्ध महिला 'पण्डिता रमाबाई' हुई तब उन्होंने 'आर्य महिला समाज' का गठन किया। उन्होंने महिलाओं की स्थिति मे सुधार के लिए स्त्री शिक्षा तथा विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। इस समय के अन्य समाजों के सिद्धांतों में स्त्री शिक्षा और उसके विरुद्ध शोषण की समाप्ति पर ज़ोर प्रमुख उद्देश्य होता था।"[3] रमाबाई ने महिलाओं की शिक्षा और विधवा-स्त्री की शोचनीय दशा को सुधारने के प्रयत्न किए। उनके द्वारा किए गए कार्यों का प्रभाव आज भी महिलाओं के जीवन में दिखाई है। पण्डिता रमाबाई के संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र में महिलाओं की सामाजिक भागीदारी पर विचार किया जाने लगा।

राजाराम मोहन राय ने जब सती प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई तभी से भारतीय समाज में नवजागरण का प्रभाव दिखाई देने लगता है। हालांकि सुनन्दा पराशर मानती हैं कि "समाज में स्त्री आंदोलन की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशकों में हुई जब पंडिता रमाबाई रानाडे, आनंदीबाई जोशी, फ्रूनिना एनी जगन्नाथ और रूकमाबाई जैसी स्त्रियाँ अपने घरों में पुरुष प्रधान समाज के थोपे गये बंधनों को तोड़कर ऊंची शिक्षा के लिए विदेश गयीं और लौटकर उन्होंने भारत में स्वतंत्र संगठन कायम किए। 1886 में स्वर्ण कुमारी देवी ने 'लेडीज एसोसिएशन' कायम किया।"[4] जब यातायात, संचार और शिक्षा के नए आयाम प्रस्तुत हुए तो पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं ने भी उनका लाभ लेना आरंभ किया, जिसके प्रभावानुरूप महिलाओं की पहुँच घर की चार दीवारी तक सीमित नहीं रही, बल्कि अब उनकी पहुँच घर-परिवार से बाहर तक होने लगी। सामाजिक बंधनों की बेड़ियों को तोड़ने के लिए महिलाओं के द्वारा शिक्षा ग्रहण करना प्राथमिक आवश्यकता थी। इसके लिए अंग्रेजी शासन ने भी विचार किया। "स्त्री-शिक्षा के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण नाम जे.ई.डी बेथून (1801-51) का है। बेथून पहली बार भारत आए। भारत में आने के साथ ही उन्होंने यहाँ स्त्री-शिक्षा के विस्तार और उन्नति के साधनों पर विचार करना शुरू कर दिया। वे ईस्ट इंडिया कंपनी की शिक्षा परिषद के अध्यक्ष थे।"[5] इनके प्रयास से बने बेथून कॉलेज से पढ़कर महिलाओं ने भारत में पहली बार स्नातक और परास्नातक की उपाधियाँ प्राप्त की।

बेथून कॉलेज से पढ़ने वाली भारत की प्रथम स्नातिका कादंबिनी गांगुली और चन्द्रमुखी बसु थीं। "कादंबिनी बसु उन लड़कियों में से एक थी जो सर्वप्रथम मेडिकल विभाग में पढ़कर लेडी डॉक्टर बन गयी। मराठी महिला आनन्दबाई जोशी जो विदेश में पढ़ी पहली हिन्दू महिला थीं। वे सुप्रसिद्ध शिक्षिका पण्डिता रामाबाई की रिश्तेदार थीं। हिलड़ा लजरुसु पहली ईसाई लेडी डॉक्टर थीं, जिन्होंने मद्रास से शिक्षा पायी।

मुथुलक्ष्मी रेड्डी का जन्म तमिलनाडु में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। उन्होंने मद्रास से शिक्षा पायी और डॉक्टर के कार्य के साथ महिलाओं की उन्नति के लिए राजनीतिक कार्य में भी सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। हिलड़ा और मुथुलक्ष्मी ने अपनी आत्मकथा में काम करने वाली महिलाओं की कठिनाई लिखी। विशेषकर मुथुलक्ष्मी ने अपने लेख में पितृसत्तात्मक समाज में चलती परदा प्रथा की निंदा की और उस पर पुरुषों का दायित्व पूछा।"[6] ये भारत की कुछ ऐसी महिलाएं थीं जो अपने-अपने क्षेत्रों में सामाजिक परिदृश्य में परिवर्तन करने का प्रयत्न कर रही थीं और भारत देश की पराधीन महिलाओं के उत्थान के लिए प्रयासरत थीं।

आरंभिक दौर में सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी कम ही देखने को मिलती है। किन्तु यहाँ से ही भागीदारी के विषय में महिलाओं ने विचार-विमर्श करना आरंभ कर दिया था। "उस समय स्त्री शिक्षा और सामाजिक क्षेत्रों की इस अवस्था के कारण राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने वाली स्त्रियों की संख्या गिनती की थी, फिर भी बंगाल और महाराष्ट्र की स्त्रियाँ बाह्य सामाजिक जीवन में ज्यादा भाग लेती थी। संयुक्त प्रांत में शिक्षा के प्रति स्त्रियों में इतनी जागरूकता नहीं थी, लेकिन स्त्रियों ने कदम बाहर निकाल कर सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी आरंभ कर दी थी।"[7] नवजागरण काल में स्त्री शिक्षा के बड़े प्रयास बंगाल और महाराष्ट्र राज्यों में किए गए। ये प्रयास महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों के द्वारा भी किए जा रहे थे। "स्त्री शिक्षा की दिशा में महाराष्ट्र के ही घोड़ो केशव कर्वे का योगदान एस.एन.डी.टी. की स्थापना के रूप में सामने आया, जिसके अंतर्गत बड़ी संख्या में शिक्षण संस्थान आज भी स्त्री-शिक्षा में महत्वपूर्ण भागीदारी निभा रहे हैं।"[8]

बंगाल और महाराष्ट्र की प्रेरणा से भारत के अन्य भागों में भी महिलाओं की शिक्षा के प्रबंध किए जाने लगे थे। इस दिशा में आर्य समाज की भूमिका उल्लेखनीय है। "1907 में आर्य समाज ने कन्या पाठशाला खोलने की ओर ध्यान दिया तथा 1901 में ही रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन में स्त्री विभाग की स्थापना की तथा हरिद्वार और वृन्दावन में कन्या गुरुकुल की स्थापना भी आर्य समाज ने की। 1904 में श्रीमति एनीबेसेंट ने बनारस में सेंट्रल हिन्दू बालिका विद्यालय की स्थापना की। 1911 में गोपाल कृष्ण गोखले ने ब्रिटिश संसद में अनिवार्य शिक्षा की मांग की और एक विधेयक भी प्रस्तावित किया जिसमें लड़कों तथा बाद में लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा की मांग की गयी थी। किन्तु उनका प्रयास विफल हो गया। 1916 में श्रीमती नाथी बाई दामोदर ठाकरसी वूमेन्स यूनिवर्सिटी खोली गयी, जिसका मुख्यालय बम्बई में था। 1916 में ही दिल्ली में लेडी हार्डिंग्ज मेडिकल कॉलेज भी खोला गया।"[9] एकाएक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा के लिए प्रयास किए जाने से महिलाओं को बल प्रदान होने लगा था। जिसके परिणाम स्वरूप महिलाएँ अब केवल अक्षर ज्ञान तक ही सीमित नहीं थीं वरन शिक्षा ग्रहण करके उन्होंने अपने अधिकारों और स्वाधीनता की मांग की। महिलाओं को शिक्षा के अवसर और अधिकार बहुत बड़े सामाजिक संघर्ष के उपरांत प्राप्त हुए। पहले तो उन्हें घर-परिवार के विरोध को झेलना पड़ा, उसके बाद घर के बाहर समाज के प्रतीकार का सामना करना पड़ा।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मार्च 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए महिलाओं ने विद्यालय जाना आरंभ किया। जिसके परिणाम सकारात्मक आए। महिलाएँ पढ़ने-लिखने लगीं। साथ ही अपने विचारों और भावों की अभिव्यक्ति करने लगीं। इसी क्रम में "बंग महिला' ने पुरुष दमन को बेनकाब किया तो उमा नेहरू, पण्डिता रमाबाई ने उसके सामाजिक राजनैतिक भागीदारी को लेकर संघर्ष किया और स्त्रियों के लिए आधुनिक विमर्श का रास्ता सुगम किया।"[10] बीसवीं सदी में महिलाओं को इस बात का ज्ञान हो चुका था, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक है। इसलिए महिलाओं ने शिक्षा पर अधिक बल देना आरंभ कर दिया था। साथ ही महिलाओं में अधिकारों और अस्मिता के प्रति एक छटपटाहट भी महसूस की जाने लगी थी। "उन्हें स्वयं भी यह अहसास गम्भीरता से होने लगा था कि वे समाज में बराबरी की अधिकारी हैं, उन्हें भी ये अधिकार मिलने चाहिए। उस समय की पत्रिकाओं में लेखिकाओं की यह माँग बराबर रही कि देश का कल्याण तब ही हो सकता है जब रीति-रिवाजों के बंधनों को तोड़कर वह स्वयं उन बातों को ग्रहण करने को तत्पर हो जाएँ, जो देश के लिए लाभकारी हैं।"[11]

स्त्री दर्पण पत्रिका

आधुनिक युग में शिक्षित महिलाओं ने साहित्य लेखन के दौरान भक्ति-नीति को दरकिनार करते हुए मातृ-शक्ति और मातृभूमि दोनों की स्वाधीनता की आवाज उठाई। "हिन्दी क्षेत्र में सर्वप्रथम स्त्री स्वतन्त्रता की अनुगूँज हमें पत्रिकाओं में दिखाई देती है। यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि इस समय की पत्र-पत्रिकाएँ केवल साहित्य चर्चा मात्र के लिए नहीं थी, बल्कि साहित्य के माध्यम से समाज सुधार के प्रयास हुए। पत्रपत्रिकाओं का भारतीय नवजागरण से घनिष्ठ संबंध रहा है।"[12] इसी क्रम में 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका की भूमिका महत्वपूर्ण है। रामेश्वरी नेहरू के सम्पादन में इलाहाबाद से निकलने वाली इस पत्रिका में राष्ट्र और समाज की विभिन्न समस्याओं को उठाया जाता था। स्त्री-दर्पण पत्रिका के संदर्भ में ममता कालिया लिखती हैं "पत्रिका का एक अंतरंग भाग कुमारी दर्पण नाम से छापता था, जिसकी संपादिका रूप कुमारी नेहरू थीं। स्त्री-दर्पण हिन्दी प्रदेश में स्त्री आन्दोलन की सबसे मुख्य पत्रिका बनी। स्त्रियों की समस्याओं को एक आन्दोलनकारी ढंग से इतनी गंभीरता और गहराई से उठाने वाली पत्रिका उस समय कोई दूसरी न थी।"[13] 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका के फरवरी 1910 के अंक में 'प्रयाग महिला समिति' के गठन की सूचना कुछ इस प्रकार छपी "हम यह समाचार अत्यंत हर्ष से लिखती हैं कि जिस सभा के बनाने का विचार प्रयाग की स्त्रियाँ बहुत दिनों से कर रही थीं, वह सभा कुछ बहिनों ने मिलकर गत मास की 22 तारीख़ को प्रयाग महिला समिति' के नाम से स्थापित की। श्रीमती धनराजरानी सपरू के निमंत्रणपत्र पर लगभग 50 स्त्रियाँ उनके स्थान पर आईं। श्रीमती कैलासरानी वातल के निवेदन करने व सब बहिनों को यही सम्मति होने पर श्रीमती नन्दरानी नेहरू सभापति बनाई गयीं।"[14] धरातल पर महिलाओं के उत्थान के लिए प्रयत्न करने वाली इलाहाबाद की महिलाओं ने स्त्री-सुधार संबंधी अपने विचारों और योजनाओं से दूर-सुदूर क्षेत्र की महिलाओं को परिचित कराने के उद्देश्य से इस पत्रिका का आरंभ किया। महिलाओं में समाज सुधार के लिए समिति और संगठन

बनाकर काम करने की प्रवृत्ति विकसित हो रही थी।

नवजागरण काल में स्त्री संघर्ष के मानक बदल रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी में महिलाएं शिक्षित हुई और बीसवीं शताब्दी में शिक्षा से प्राप्त चेतना को साहस के साथ प्रकट किया। उत्तर से लेकर दक्षिण तक भारत में महिलाओं का एक तबका अपने अधिकार और स्वतंत्रता के प्रति जागरूक और सजग हो चुका था। "भारतीय स्त्रियों की जागृति की दिशा में एक महत्वपूर्ण घटना भारतीय राजनीति में डॉ. ऐनी बेसेंट का प्रवेश था। सन 1914 में उन्होंने मद्रास में 'भारत जागो' शीर्षक से एक भाषण दिया था, जिसमें भारतीय स्त्रियों से अपनी दासता समाप्त करने की अपील की। इस अपील से स्त्रियों में एक नयी चेतना की लहर फैली।"[15] एनी बेसेंट ने भारतीय महिलाओं की दशा को सुधारने की दिशा में प्रयत्न किए। जिसके उपरांत उन्हें भारतीय समाज और राजनीति में महत्व दिया जाने लगा। इसी क्रम में एनी बेसेंट और मारग्रेज़ कज़िन के प्रयासों से 'मई 1917 में 'प्रथम महिला संघ' की स्थापना हुई। देश में विभिन्न स्थानों पर इसकी 87 शाखाएँ खोली गयी।"[16] इन शाखाओं के माध्यम से महिलाओं की सभाएं आयोजित की जाती थीं। जिसमें स्त्री सुधार की दिशा में विभिन्न प्रयास किए जाते थे।

निष्कर्ष

महिलाओं के द्वारा अपने अधिकार और अस्मिता के लिए नवजागरण काल में ही बड़ा संघर्ष किया गया था। जिसका प्रभाव साहित्यए समाज और राजनीतिक क्षेत्र में अभी तक प्रतिध्वनित होता है। इस दौर में महिलाएँ विद्यालय से कार्यालय तक पहुँचीं। घर से बाहर निकलकर सामाजिक बंधनों को चुनौती प्रदान की और अपने अधिकारों की मांग की। महिलाओं का यह संघर्ष किसी के विरोध में नहीं था वरन मात्र अपनी अस्मिता के पक्ष में था। सावित्री बाई फुले, पंडिता रमाबाई, रानाडे, आनंदीबाई जोशी, एनी बेसेंट इत्यादि अनेक ज्ञात-अज्ञात महिलाओं ने इस संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 नगेन्द्र (संपा.), हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, संस्करण 2015, पृष्ठ 432

2 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 16

3 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 18

4 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 25

5 तलवार वीरभारत, रस्साकशी, वाणी प्रकाशनए नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ 42-43

6 कोमात्सु हिसा, स्त्री अस्मिता की खोज, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृष्ठ 89

7 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 51

8 गुप्ता सुनीता, हिन्दी कविता में स्त्री स्वर, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 67

9 वर्मा कीर्ति, स्त्री शिक्षा का इतिहास, रोशनी पब्लिकेशन्स, कानपुर, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 28-29

10 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, भूमिका 11 10 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 34

12 10 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 20

13 कालिया ममता (संपा) महिला लेखन के सौ वर्ष, लोकभारती पेपरबैक्स, प्रयागराज, प्रथम संस्करण 2020, भूमिका से

14 श्रीवास्तव गरिमा (भूमिका एवं प्रस्तुति), स्त्री-दर्पण, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 62

15 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 51-52

16 पराशर सुनन्दा, हिन्दी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 51-52